International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(6): 12-18

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(6): 12-18
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-09-2018
Accepted: 08-10-2018

धर्मपाल
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
धर्मपाल
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सरस्वतीकण्ठाभरण : एक समीक्षा

धर्मपाल

प्रस्तावना

व्याकरण भाषा का मेरुदण्ड है। वेदाङ्गों में इसका स्थान सर्वोपरि है – मुखं व्याकरणं स्मृतम्[1]। भगवान् पतञ्जलि ने भी "प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्"[2] कहकर व्याकरण के महत्त्व को बताते हुए उसे सर्वोपरि माना है। व्याकरण शास्त्र के माध्यम से ही शब्दों का समुचित प्रयोग सम्भव होता है। व्याकरण से शिष्ट भाषा का संवर्धन तथा परिष्कार होता है।

संस्कृत व्याकरण की गौरवशाली परम्परा में पाणिनि उत्तरवर्ती व्याकरणग्रन्थों का ऐतिह्य पर्याप्त विस्तृत एवं वैभव सम्पन्न है। पाणिनीय शब्दानुशासन जैसे सर्वोत्कृष्ट एवं सम्पूर्ण व्याकरण के प्राप्त हो जाने पर भी पाणिनीयेतर सम्प्रदाय के व्याकरणों का आविर्भाव भाषायी विकास एवं मानवीय चिन्तनशीलता की विकासयात्रा का विलक्षण उदाहरण है। पाणिनि उत्तरवर्ती व्याकरणों में कातन्त्र, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण, सारस्वत, मुग्धबोध, हरिनामामृत आदि व्याकरण विशेषतः उल्लेखनीय है। इसी व्याकरण परम्परा में भोजदेव-विरचित 'सरस्वतीकण्ठाभरण' सबसे महत्त्वपूर्ण है। प्रकृत शोधपत्र में इसी भोजीय तन्त्र 'सरस्वतीकण्ठाभरण' को आधार बनाकर समासवृत्ति का विश्लेषण किया जा रहा है। जिससे तत्तन्त्रगत समासवृत्ति को साम्य-वैषम्यादि की रीति से तथा नवीन संकल्पनाओं को नवनीतवत् पाठक के समक्ष समुपस्थित कराया जा सकें।

सरस्वतीकण्ठाभरण : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

संस्कृत व्याकरणशास्त्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन व समृद्ध है। इसमें इसमें आचार्य पाणिनि व उनकी अक्षय्य यशःसम्पन्न कालजयी कृति अष्टाध्यायी विश्वविश्रुत है। एतदतिरिक्त पाणिनि परवर्ती व्याकरणों का ऐतिह्य भी पर्याप्त विस्तृत एवं वैभव सम्पन्न है। पाणिनीयतन्त्र के समुपस्थिति में भी पाणिनीयेतर व्याकरण-सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव भाषिक विकास व मानवीय चिन्तनसरणि के समुन्नत विकासयात्रा का एक विलक्षण उदाहरण है। पाणिनि-परवर्ती व्याकरणतन्त्रों में कातन्त्र, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, सारस्वत, मुग्धबोध, हरिनामामृत आदि व्याकरणतन्त्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी परम्परा में ११वीं शताब्दी में संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न विधाओं में ग्रन्थप्रणयन कर्त्ता भोज ने कात्यायन तथा पतञ्जलि द्वारा परिपोषित, परिवर्धित पाणिनीयतन्त्र के विस्ताराधिक्य के कारण अध्यन में होने वाले क्लेश का अनुभव करके एक ऐसे व्याकरण के प्रणयन का निश्चय किया, जिसमें एकत्र ही समग्र अध्ययन हो सके[3]। पाणिनीय-तन्त्र सूत्रपाठ, उणादिपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, लिङ्गानुशासन, परिभाषा व वार्तिक आदि के पृथक्-पृथक् निबद्ध होने के कारण अध्ययन में सुकर न था। पृथक् रूप में निबद्ध होने से इनके अध्ययन में भी प्रमाद होने लगा[4]। भोज ने इस विषम परिस्थिति पर गहन-चिन्तन कर उपरिनिर्दिष्ट पारम्परिक न्यूनताओं के परिहार हेतु स्वशब्दानुशासन सरस्वतीकण्ठाभरण की रचना की। भोज ने स्वव्याकरण में सूत्रपाठ के साथ साथ परिभाषा, उणादि, गणपाठ एवं फिट्सूत्रों का समावेश कर व्याकरण की पारम्परिक विधा का परिष्कार कर इसे एक नूतन कलेवर में आबद्ध किया। इसका मूलाधार अष्टाध्यायी है। तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि दोनों व्याकरणों में सहस्राधिक सूत्र अक्षरशः समान हैं। पाणिनीय परम्परा के वार्तिक, महाभाष्य, काशिका आदि ग्रन्थों का पूर्णतः उपयोग करते हुए भोज ने मुक्तामणि सदृश सरस्वतीकण्ठाभरण का प्रणयन किया। इस पर पाणिनि-परवर्ती कातन्त्र, चान्द्र, जैनेन्द्र व शाकटायन आदि व्याकरणों का भी प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है, विशेषतः चान्द्र का। इसके प्रत्यय, सूत्रशैली, प्रकरण विभाजन आदि पर चान्द्र का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है[5]। इन सभी व्याकरण-तन्त्रों के समग्र सार, कालक्रम से प्राप्त उत्तरोत्तर परिष्कार व भाषा की प्रवाहनित्यतावशात् सम्प्राप्त नूतन प्रयोगों को समावेशित व सम्पूरित कर

[1] पाणिनीय शिक्षा, पृ. १९
[2] महाभाष्य - पस्पशाह्निक
[3] सं. व्या. शा. इ. (प्रथम भाग), युधिष्ठिर मीमांसक, पृ. ७००।
[4] वही, पृ. ७०७।
[5] द्र. सरस्वतीकण्ठाभरण और सिद्धान्तकौमुदी का साङ्गोपाङ्ग विवेचन, तृतीय अध्याय।

सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण के प्रणयन में भोज निश्चय ही सफल हुए हैं। यद्यपि सूत्रसंख्या की वृद्धिवशात् इसका कलेवर अधिक विस्तृत हो गया है, पर अब सम्पूर्ण व्याकरण-तन्त्र एक ही ग्रन्थराशि में उपनिबद्ध होने से एकत्र ही सुलभतया प्राप्य है। योगसूत्रवृत्ति के प्रारम्भ में भोज ने इस विलक्षण शब्दानुशासन का उल्लेख किया है[6]। यह अवधेय है कि भोज के व्याकरण में धातुपाठ प्राप्त नहीं होता, पर भोज चान्द्र से प्रभावित है और चान्द्र का धातुपाठ उपलब्ध है[7]।

सरस्वतीकण्ठाभरण के संस्करण

मूल सूत्रपाठ

मूल सूत्रपाठ का एकमात्र संस्करण १९३७ ई. में मद्रास विश्वविद्यालय से टी. आर. चिन्तामणि ने सम्पादित व प्रकाशित किया। इसकी प्रस्तावना(foreword) सी. कुन्हनराजा ने व भूमिका (preface) स्वयं सम्पादक (टी. आर. चिन्तामणि) ने लिखी है। एतदर्थ प्रयुक्त हस्तलेखों का विवरण तथा भोज के व्यक्तित्व व कृतित्व का संक्षिप्त व सारगर्भित विवरण भी सम्पादक ने प्रस्तुत किया है। श्री नारायण प्रसाद ने इसके सम्पादन में प्रयुक्त सभी हस्तलेखों का विस्तृत विवरण स्वशोधपत्र में दिया है[8]। इस संस्करण में ६४३२ सूत्र हैं। ग्रन्थान्त में वर्णानुक्रम से सूत्रसूची दी गई है। एतदतिरिक्त एक अत्यन्तोपयोगी परिशिष्ट भी संलग्न किया गया है, जिसमें परिश्रमसहित सरस्वतीकण्ठाभरणस्थ सूत्रों की तुलना पाणिनीय सूत्र, महाभाष्यस्थ वार्तिक व इष्टि तथा काशिका आदि से की गई है।

सरस्वतीकण्ठाभरण की हृदयहारिणी व्याख्या का संस्करण

सरस्वतीकण्ठाभरण की दण्डनाथप्रणीत हृदयहारिणी व्याख्या का अद्ययावत् एकमात्र संस्करण ही प्रकाशित है। यह सारगर्भित व्याख्या ६ अध्यायों तक चार भागों में प्रकाशित है।

प्रथम भाग

यह प्रथम संस्करण मात्र प्रथम अध्यायात्मक ही है। प्रथम अध्याय की हृदयहारिणी व्याख्या सहित अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावलि के ग्रन्थ प्रकाशन की क्रम संख्या ११७ में यह संस्करण १९३५ में प्रकाशित हुआ। सम्पादक साम्बशिव शास्त्री ने भूमिका (आंग्लभाषा में लिखित) में संक्षेप से ग्रन्थ परिचय व भोज का इतिवृत्त भी प्रस्तुत किया। ग्रन्थान्त में वर्णानुक्रम से सूत्रसूची व व्याख्या में उद्धृत अन्य ग्रन्थों के वाक्यों की सूची संलग्न है।

द्वितीय भाग

यह संस्करण भी के. साम्बशिव शास्त्री के सम्पादकत्व में अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावलि के ग्रन्थ प्रकाशन की क्रम संख्या १२७ के अन्तर्गत १९३७ में प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में द्वितीय अध्याय की हदयहारिणी व्याख्या प्रकाशित की गई। ग्रन्थारम्भ में संक्षेपरीत्या प्रतिपाद्य की सूचना दी गई है तथा ग्रन्थान्त में वर्णानुक्रम से सूत्रसूची।

तृतीय भाग

यह संस्करण भी के. साम्बशिव शास्त्री के सम्पादकत्व में अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थमाला के प्रकाशन की क्रम संख्या १४० के अन्तर्गत १९३८ में प्रकाशित हुआ। इसमें तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय की हृदयहारिणी प्रकाशित है। पूर्ववत् संक्षेप में तृतीय व चतुर्थ अध्याय का प्रतिपाद्य तथा ग्रन्थान्त में वर्णानुक्रम से सूत्रसूची प्रकाशित है।

चतुर्थ भाग

यह भाग वी. ए. रामास्वामी शास्त्री के सम्पादकत्व में त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज के प्रकाशन क्रम १५४ के अन्तर्गत १९४८ में प्रकाशित हुआ। इसमें पञ्चम व षष्ठ अध्याय की हृदयहारिणी प्रकाशित है। ग्रन्थारम्भ में आमुखत्वेन सम्पादक ने संक्षेपरीत्या व्याकरण-परिचय व विषयवस्तु का अध्यायानुसार विवरण दिया है।

के. एस. महादेव शास्त्री ने प्रस्तावना में भोज की सूत्र-प्रणयन सरणि पर विचार-मन्थन कर उसके महत्त्व को निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया है –

"किं बहुना। भाष्यवार्तिककाशिकादिसारांशसङ्कलेन मतन्तरसम्प्रथनेन तत्तत्काल-समुच्चितानां नैकेषां शब्दानां संग्रहणेन भवति च गहनतरव्याकरणाम्भोधिमुत्तित्तीर्षूणां च प्लव इव परमोपकारकमपूर्वं भोजीयमिदं सरस्वतीकण्ठाभरणाख्यं ग्रन्थरत्नम्[9]।

इसी प्रसंग में श्री शास्त्री ने दण्डनाथप्रणीत हृदयहारिणी पर भी विचार-विमर्श प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार यह व्याख्या काशिका व कैय्यटप्रणीत महाभाष्यप्रदीप से अत्यधिक प्रभावित है[10]।

अवधेय

सरस्वतीकण्ठाभरण के सप्तम अध्याय की हृदयहारिणी व्याख्या अद्यावधि अप्रकाशित है। इसका एक मलयालम हस्तलेख प्राच्य शोध संस्थान, केरल विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम् (क्र. ८१७) में उपलब्ध है तथा देवनागरी में हस्तलेख अड्यार लाईब्रेरी चेन्नई (क्र. ६९८) में है। अष्टम अध्याय पर हृदयहारिणी व्याख्या का हस्तलेख अद्ययावत् प्राप्त नहीं हुआ है।

सरस्वतीकण्ठाभरण के व्याख्याकार

भोज

सरस्वतीकण्ठाभरण पर भोजकृत स्वोपज्ञ व्याख्या सम्प्रति समुपलब्ध नहीं है। परन्तु विविध् ग्रन्थों में इसकी स्थिति के साक्ष्य प्राप्त होते है। गणरत्नमहोदधिकार वर्धमान के अनुसार –

"भोजस्तु सुखादयो दश क्यञ्विधौ निरूपिता इत्युक्तवान्"[11]।

युधिष्ठिर मीमांसक का कथन है कि यह उदाहरण "जातिकालसुखादिभ्यश्च" (सर. ३-३-१०१) सूत्र की भोजप्रणीत स्वोपज्ञवृत्ति से लिया गया है[12]। क्षीरस्वामी की अमरकोशोद्घाटनटीका में भी भोजकृत स्वोपज्ञवृत्ति के उदाहरण प्राप्त होते हैं[13]।

दण्डनाथप्रणीत हृदयहारिणी व्याख्या के प्रत्येक पादान्त में प्रोक्त पुष्पिका से भी भोजकृत स्वोपज्ञवृत्ति का निश्चय होता है – "इति श्रीदण्डनाथनारायणभट्टसमुद्धृतायां सरस्वतीकण्ठाभरणस्य लघुवृत्तौ हृदयहारिण्याम्....."। यहाँ समुद्धृतायाम् तथा लघुवृत्तौ पद से यह निश्चय होता है कि दण्डनाथ द्वारा किसी व्याख्या को संक्षिप्त किया गया। युधिष्ठिर मीमांसक के मत में सम्भव है वह भोजकृत हो[14], पर महादेव शास्त्री उसे काशिकावृत्ति स्वीकार करते है[15]।

दण्डनाथ नारायण भट्ट

दण्डनाथ नारायण भट्ट ने सरस्वतीकण्ठाभरण पर "हृदयहारिणी" नामक व्याख्या लिखी, जो षष्ठाध्याय पर्यन्त प्रकाशित है। इसकी विस्तृत चर्चा पूर्व ही हो चुकी है। दण्डनाथ का प्रामाणिक इतिवृत्त प्राप्त नहीं है तथापि प्रायः इनका काल १३०० ई. माना जाता है[16]।

---

[6] "शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता,
वृत्तिं राजमृगाङ्कसञ्ज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके।
वाक्चतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृत-
स्तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः"॥

[7] चा. व्या., पृ. १०५-२०६।

[8] Sarasvatikanthabharana, The Magnum Opus of Sanskrit Grammar, Sambodhi, Vol. xxv, 2002.

[9] प्रस्तावना, स.क. (भाग-४), पृ. १२।

[10] वही, पृ. १३।

[11] ग. म., पृ. १३१।

[12] सं. व्या. शा. इ. (प्रथम भाग), पृ. ७०८।

[13] "इल्वलास्तारकाः। इल्वलोऽसुर इत्युणादौ श्रीभोजदेवो व्याकरोत्"। (अमरटीका १-२-२४)।

[14] सं. व्या. शा. इ. (प्रथम भाग), पृ. ७०९।

[15] स. क. (भाग चतुर्थ), प्रस्तावना, पृ. १३।

[16] स. क. सि. कौ. सां. वि., पृ. ३८।

कृष्ण लीलाशुक मुनि

कृष्ण लीलाशुक मुनि ने सरस्वतीकण्ठाभरण पर "पुरुषकार" नामक व्याख्या की। इसका एक हस्तलेख त्रिवेन्द्रम् के हस्तलेख संग्रह में सुरक्षित है[17]। युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इस व्याख्या में पाणिनि-प्रणीत "जाम्बवतीविजय" नामक रूपक के अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं[18]।

प्रक्रियाग्रन्थ

प्रक्रियाकौमुदी के प्रसाद टीकाकार का यह कथन- "तथा च सरस्वतीकण्ठाभरणप्रक्रियायां पदसिन्धुसेतावित्युक्तम्"[19] यह सिद्ध करता है कि सरस्वतीकण्ठाभरण के आधार पर किसी पदसिन्धुसेतु नामक प्रक्रियाग्रन्थ की रचना हुई थी।

डॉ. नारायण म. कंसारा

डॉ. नारायण म. कंसारा ने सरस्वतीकण्ठाभरण के अष्टम अध्याय पर संस्कृत में संक्षिप्त सूत्रार्थ सहित गुजराती भाषा में व्याख्या की है। यह राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान, नई दिल्ली से १९९२ ई. में प्रकाशित है। प्रथम प्रयास के रूप में निश्चयेन यह कार्य प्रयत्नसाध्य व प्रशंसास्पद है, परञ्च डॉ. रामचन्द्र के मतानुसार इसमें भ्रमवशाद् यत्र-तत्र भोज के अभिप्राय के सर्वथा विपरीत व्याख्या की गई है[20]।

रामसिंह देव

युधिष्ठिर मीमांसक ने रामसिंह देव कृत "रत्नदर्पण" नामक व्याख्या का उल्लेख किया है[21]।

सरस्वतीकण्ठाभरण से सम्बद्ध अन्य ग्रन्थ

१. "सरस्वतीकण्ठाभरण-वैदिक व्याकरणम्" नामक ग्रन्थ राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान, नई दिल्ली से १९९२ में प्रकाशित है। इसके लेखक डॉ. नारायण म. कंसारा है। यह अष्टम अध्याय की व्याख्या रूप में लिखा गया है।

२. "सरस्वतीकण्ठाभरण का समीक्षात्मक अध्ययन" नामक ग्रन्थ परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली से १९९६ में प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक विश्वनाथ शास्त्री है। इसमें अष्टम अध्यायस्थ वैदिक व्याकरण पर विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

३. "A comparative study of Panini's Ashtadhyayi and Bhoja's Saraswatikanthabharanam" नामक ग्रन्थ हैदराबाद से २००२ ई. में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक के. नीलकण्ठम है।

४. "सरस्वतीकण्ठाभरण और सिद्धान्तकौमुदी का साङ्गोपाङ्ग विवेचन (तद्धित प्रकरण के विशिष्ट सन्दर्भ में)" नामक ग्रन्थ परिमल पब्लिकेशन्स से २०१० ई. में प्रकाशित है। इसके लेखक डॉ. रामचन्द्र है।

५. "सरस्वतीकण्ठाभरण के भ्रष्टपाठ : सत्पाठ निर्धारण" नामक ग्रन्थ भी परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली से प्रकाशित है। इसके लेखक भी डॉ. रामचन्द्र है। इसमें ५२ भ्रष्टपाठों का सत्पाठ अतीव प्रवीणता से निर्धारित किया गया है।

सरस्वतीकण्ठाभरण : सामान्य परिचय

विविधविद्याविशारद, नानाशास्त्रविचक्षण भोज ने पाणिनीय व चान्द्रादि व्याकरण तन्त्रों से साहाय्य प्राप्त कर स्वनैसर्गिकी प्रतिभा,शास्त्राभ्यास व सृजनशक्ति के समवेत कारणता से "सरस्वतीकण्ठाभरण" का प्रणयन किया। इसके ऐतिह्य, संस्करण, टीकाग्रन्थ तथा तत्सम्बद्ध अन्यग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत कर सम्प्रति इसके विषयवस्तु व प्रतिपाद्य का क्रमशः आद्योपान्त विवरण प्रस्तुत है –

सरस्वतीकण्ठाभरण में पाणिनीय अष्टकवत् ८ अध्याय हैं व प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं, परन्तु सूत्रसंख्या में अधिकता वा न्यूनता दृष्टिगोचर होती है। इसके सूत्रपाठ, परिभाषा सूत्र, उणादिसूत्र, गणसूत्र, इष्टि, वार्तिक व फिट्सूत्र आदि से समवेत विस्तृत कलेवर में ६४३२ सूत्र हैं। ग्रन्थारम्भ में "मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते"[22] की विश्रुत परम्परा का अनुसरण करते हुए –

"प्रणम्यैकात्मतां यातौ प्रकृतिप्रत्ययाविव।
श्रेयःपदमुपेशानौ पदलक्ष्म प्रचक्ष्महे"॥

इस मङ्गलाचरण से प्रकृतिप्रत्ययवद् एकात्मभाव को प्राप्त मोक्षपदरूप उमा-शङ्कर को प्रणाम कर शब्दानुशासन का प्रणयन करते हैं।

प्रतीत होता है कि भोज पार्वती तथा शिव की तुलना व्याकरणशास्त्र के मूलभूत "प्रकृति-प्रत्यय" से करके शास्त्र के सूक्ष्मतमत्व की ओर इङ्गित करना चाहते हैं, वही व्याकरण की पावनता[23] व निश्रेयसास्पद-प्रापिका[24] आध्यात्मिकता को भी सूचित करते है।

यह अवधेय है कि जैन परम्परा के अनुसार भोज के व्याकरण का मङगलश्लोक उपर्युक्त न होकर इस प्रकार है –

"चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम।
मानसे रमतां नित्यं शुद्धवर्णा सरस्वती"॥[25]

प्रत्याहार सूत्र

प्रत्याहार सूत्रों की परम्परा पाणिनि, चान्द्र आदि प्रायः सभी व्याकरणों का अविभाज्य अङ्ग है। विद्वत्परम्परा इसके आद्य प्रणेता के विषय में अद्ययावत् एकमत नहीं है। कुछ के मत में इनके आद्य प्रणेता महेश्वर[26] है तो कुछ के मत में पाणिनि[27] ही है। भोज ने पाणिनीय प्रत्याहार सूत्रों में से १.हयवरट् और २.लण् को संयुक्त कर "हयवरलण्" सूत्र बनाया। शेष प्रत्याहार सूत्र यथावत् ग्रहण किए हैं। भोजीय तन्त्र में अट् प्रत्याहार का प्रयोग ही नहीं किया गया है अतः "ट्" अनुबन्ध की आवश्यकता नहीं है।

प्रथम अध्याय

प्रत्याहार सूत्रों के अनन्तर अध्यायक्रम प्रारम्भ होता है। पाणिनीय तन्त्र में प्रारम्भिक पादों में संज्ञाओं का विधान किया गया है, परन्तु कुछ संज्ञायें अष्टाध्यायी के अन्य अध्यायों में भी प्राप्त होती हैं[28]। भोज ने अशेष संज्ञाओं का विधान प्रथम पाद में ही कर दिया है।

प्रथम पाद

इस पाद का प्रथम सूत्र है - सिद्धिः क्रियादेः लोकात्। इसका मूल कात्यायनकृत वार्तिक "सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे"[29] तथा जैनेन्द्र व्याकरण के प्रथम सूत्र "सिद्धिरनेकान्तात्" में प्राप्त होता है। पतञ्जलि के अनुसार कात्यायनकृत वार्तिक में प्रयुक्त सिद्ध शब्द नित्य पद का पर्यायवाची है तथा मङ्गलसूचकतावशाद् प्रयुक्त हुआ है-"माङ्गलिकः आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं सिद्धशब्दमादितः

---

[17] सं. व्या. शा. इ. (प्रथम भाग), पृ. ७१०।

[18] वही, पृ. ७१०।

[19] वही, पृ. ७१२।

[20] स. क. सि. कौ. सां. वि., पृ. ३९।

[21] सं. व्या. शा. इ. (प्रथम भाग), पृ. ७११।

[22] व्या.म., पस्पशाह्निक

[23](क) "आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः। प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहुर्व्याकरणं महत्"॥
(ख) "तद्द्वारमपवर्गस्य वाङ्मलानां चिकित्सितम्। पवित्रं सर्वविद्यानामधिविद्यं प्रकाशते"॥ -वा.प., ब्रह्मकाण्ड, कारिका- १३,१४।
(ग) "आपः पवित्रं परमं पृथिव्यामपां पवित्रं परमं च मन्त्राः।
तेषां च सामर्थ्यजुषां पवित्रं महर्षयो व्याकरणं निराहुः"॥ - उद्धृत, स्वोपज्ञवृत्ति, वा.प., वहीं, कारिका- १४।

[24](क) "प्राप्तरूपविभागायाः यो वाचः परमो रसः। यत्तत्पुण्यतमं ज्योतिस्तस्तस्य मार्गोऽयमाञ्जसः"॥
(ख) "इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम्। इयं सा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः"॥
(ग) "यदेकं प्रक्रियाभेदैर्बहुधा प्रविभज्यते। तद्व्याकरणमागम्य परं ब्रह्माधिगम्यते"॥ -वा.प., ब्रह्मकाण्ड, कारिका- १२,१६,२२।

[25] स. क. समी. अ., पृ. १७१।

[26] इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थकानि। (सिद्धान्तकौमुदी)

[27] सं. व्या. शा. इ., (प्रथम भाग), पृ. २४१।

[28] यथा – अपादान (१-४-२४), अभ्यास (६-१-४), आम्रेडित (८-१-२)।

[29] व्या. म., पस्पशाह्निक।

प्रयुङ्क्ते"[30]। भोज ने एक ओर जहाँ शास्त्राध्येता के माङ्गल्य की कामना की, वहीं यह भी व्यक्त किया कि यह शास्त्र लोकानुगामी है। दण्डनाथ हृदयहारिणी में इस सूत्र की व्याख्या में कहते है – "क्रियागुणद्रव्यजातिकालादीनां लोकतो वैयाकरणसमयविदः सिद्धिरवगन्तव्याः"।

भोज ने प्रथम पाद में ८२ संज्ञाओं का विधान किया है। प्रायः संज्ञायें पाणिनीय तन्त्रवत् ही हैं। यथा – १. धातु, २. प्रातिपादिक, ३. प्रकृति, ४. प्रत्यय, ५. विकरण, ६. कृत्, ७. कृत्य, ८. सत्, ९. निष्ठा, १०. तद्धित, ११. घ, १२.सङ्ख्या, १३. विभक्ति, १४. प्रथम, १५. मध्यम, १६. उत्तम, १७. प्रथमा, १८. द्वितीया, १९. तृतीया, २०. चतुर्थी, २१. पञ्चमी, २२. षष्ठी, २३. सप्तमी, २४. एकवचन, २५. द्विवचन, २६. बहुवचन, २७. परस्मैपद, २८. आत्मनेपद, २९. पद, ३०. उपपद, ३१. उपसर्जनम्, ३२. कर्मधारय, ३३. द्विगु, ३४. वाक्य, ३५. कारक, ३६. कर्त्ता, ३७. हेतु, ३८. कर्मकर्त्ता, ३९. कर्म, ४०. करण, ४१. सम्प्रदान, ४२. अपादान, ४३. अधिकरण, ४४. आमन्त्रित, ४५. सम्बुद्धि, ४६. अभ्यास, ४७. अभ्यस्त, ४८. सम्प्रसारणम्, ४९. गुण, ५०. वृद्धि, ५१. वृद्ध, ५२. संयोग, ५३. उपधा, ५४. टि, ५५. आगम, ५६. लोप, ५७. लुक्, ५८. श्लु, ५९. लुप्, ६०. ह्रस्व, ६१. दीर्घ, ६२. प्लुत, ६३. उदात्त, ६४. अनुदात्त, ६५. स्वरित, ६६. लघु, ६७. गुरु, ६८. अनुनासिक, ६९. सवर्ण, ७०. अनुस्वार, ७१. विसर्जनीय, ७२. प्रगृह्य, ७३. सर्वनाम, ७४. निपात, ७५. उपसर्ग, ७६. गति, ७७. कर्मप्रवचनीय, ७८. अव्यय, ७९. षित् ८०. मित्, ८१. सार्वधातुक, ८२. आर्धधातुक।

भोज ने पाणिनीय व्याकरण की अनेक संज्ञाओं को स्व-तन्त्र में स्थान नहीं दिया, तद्यथा – सर्वनामस्थान (अ. १-१-४१), अपृक्त (अ.१-२-४१), नदी (अ.१-४-३), घि (अ. १-४-७) तथा आम्रेडित (अ.८-१-२) आदि। एतदतिरिक्त कुछ नवीन संज्ञाओं का विधान किया है –

> तदुभयं विकरणविभक्ती च प्रत्यये प्रकृतिः। (सर. १-१८)।
> सस्यादिराशानचो विकरणः। (सर. १-१-१०)।
> प्राक्जितीयाणादयस्तद्धिताः। (सर. १-१-१५)।
> आख्यातं साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्। (सर. १-१-३१)।
> क्रियानिमित्तं कारकम्। (सर. १-१-३२)।
> टिन्मित्किदादिः प्रकृतिप्रत्ययांश आगमः। (सर. १-१-८७)।

द्वितीय पाद

इस पाद में परिभाषाओं का विधान किया गया है। परिभाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए महाभाष्यकार कहते है – "परिभाषा पुनरेकदेशस्था सती सर्वं शास्त्रमभिज्वलयति यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्वं वेश्माभिज्वलयति"[31]। अष्टाध्यायी में "स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा" (१-१-७१) आदि कतिपय परिभाषाएँ कण्ठरवेण प्रोक्त है तथा महाभाष्य में अनेक परिभाषाओं का परिगणन किया गया है, जिनका यत्र-तत्र कार्यसिद्धि हेतु उपयोग होता है। भोज की परिभाषाएँ पाणिनीय सूत्रों, महाभाष्यीय वचनों व लौकिक वचनों पर आधारित हैं। वर्तमान में नागेशभट्टकृत "परिभाषेन्दुशेखर" परिभाषाओं हेतु प्रामाणिक व प्रतिष्ठित ग्रन्थ है।

तृतीय पाद

इस पाद में मुख्यतः सनादि प्रत्यय, विकरण-प्रत्यय, कृत्-प्रत्यय तथा कृत्य-प्रत्यय विहित हैं। इनका विवरण इस प्रकार है –

सनादि प्रत्यय – "तिजः क्षमायां सन्" (सर. १-३-१) से "लोटः कृञश्च लोट्यनुप्रयोगः" (सर. १-३-७४) तक सन्, काम्यच्, क्यच्, विप्, क्यङ्, क्यष्, यक्, यङ्, णिच्, ईयङ्, णिङ् तथा आम् इन बारह प्रत्ययों का विधान है।

विकरण प्रत्यय – "स्यतासी लृलुटोः" (सर. १-३-७५) से "हलो हौ शानच्" (सर. १-३-१२५) तक स्य, तासि, सिच्, क्स, चङ्, अङ्, चिण्, यक्, शप्, लुक्, श्लु, श्यन्, श, श्नम्, उ, श्नु, श्ना तथा शानच् ये प्रत्यय विहित हैं।

कृत्य प्रत्यय – "तव्यत्तव्यानीयरः" (सर. १-३-१२८) से "आवश्यकाधमर्ण्यार्हशक्तिषु" (सर. १-३-१८५) तक तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, तथा ण्यत् प्रत्ययों का विधान है।

कृत् प्रत्यय – "तव्यादयः प्राक्तिपः कृतः" (सर. १-१-११) के अनुसार "तव्यत्तव्यानीयरः" (सर. १-३-१२८) से "आशिषि च" (सर. २-४-२८३) तक कृत् प्रत्ययों का विधान है। इस पाद में उपर्युक्त कृत्य प्रत्ययों के अतिरिक्त ण्वुल्, तृच्, अच्, ल्यु, णिनि, क, ड, श, ण, थकन्, ण्युट्, ष्वुन्, एवं वुन् प्रत्यय समाहित हैं।

चतुर्थ पाद

अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद का समग्र कथ्य इस पाद में विहित है। प्राय: इसमें ७० प्रत्ययों का विधान किया गया है। तृतीय पादोक्त कतिपय प्रत्यय पुनः प्रयोजनवशाद् पठित हैं। लुङ्, लङ् आदि ७ लकारों का भी उल्लेख है।

द्वितीय अध्याय

प्रथम पाद - इस पाद में भोज उणादि प्रत्ययों का विधान करते हैं। इसमें ३४८ सूत्रों में "कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्" (सर. २-१-१) से "अनसि वहेः क्विप् डश्चानसः" (सर. २-१-३४८) तक उण्, ञुण्, उ, कु, आकु, दानुक्, कङ्गुच्, अटुच्, डु, णु, एणु, तु, तुन्, कतु, अतुस्, आतुच्, नु, इष्णुच्, आनुक्, रदानुक्, अक्नु, इत्नुच्, चिपुक्, बु, अमु, युस्, त्युक्, रु, क्रुन्, अरु, लुट्, लुक्, आलुच्, शुन्, षुक्, अक्षु, ऊ, कू, डू, आगुच्, तृच्, डै, डो, डौ, इ, इण्, कि, अकि, डखि, डिखि, ईचि, ढि, अन्ति, उन्ति, मि, क्मिन्, रि, त्रिप्, क्रिन्, उरिन्, उरिन्, अलिच्, मलिच्, विन्, सिक्, असि, ई, चिक्, अजि, इत्यादि प्रत्यय विहित हैं।

द्वितीय पाद – इस पाद में भी पूर्ववत् उणादि प्रत्ययों का ही विधान है। इसके २५५ सूत्रों में आतृकन्, कन्, क, वुन्, आक, किकन्, कीकन्, उकन्, ऊक, आनक, क्तकन्, ईतक, आतक, ख, ग, गन्, आगच्, अङ्गच्, इङ्गक्, उङ्गच्, घ, अघच्, इत्यादि प्रत्यय विहित हैं।

तृतीय पाद – १९१ सूत्रात्मक इस पाद में भी उणादि प्रत्यय ही विहित हैं। तद्यथा – य, क्यप्, अयन्, आयक्, आय्य, इयक्, ञालीयर्, स्यन्, अथ्यक्, एन्य, अन्यन्, रक्, क्रन्, आरन्, किरच्, ईरच्, उरच्, उरन्, ऊरन्, एरक्, करन्, तरन्, सरन्, ष्वरच्, ष्ट्रन्, स्नन्, अत्रन्, इत्यादि।

चतुर्थ पाद – इस पाद में अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय के तृतीय व चतुर्थ पाद की विषयवस्तु का प्राय: आधा भाग संग्रहित है। इसमें लट्, लिङ्, लुङ्, लुट्, लृट्, शतृ, शानच्, ण्वुल्, अण्, तुमुन् आदि प्रत्ययों का विधान है व तदनन्तर घञ् प्रत्यय का अधिकार प्रवृत्त होता है। एतदनन्तर क, अच्, अप्, ण, क्त्रि, णच्, अनि, ण्वुल्, इञ्, इत्यादि प्रत्यय विहित हैं।

तृतीय अध्याय

प्रथम पाद - इस पाद का आरम्भ अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय के अवशिष्ट विषय से होता है। "लस्तिप्तस्झि." (सर, ३-१-१) से "द्विषाद्भ्यो वा" (सर. ३-१-४०) तक तिङन्त प्रक्रिया से सम्बद्ध विविध आदेश व आगम विहित हैं। तदनन्तर आत्मनेपद, परस्मैपद प्रकरण तथा एकशेष प्रकरण विहित है। "कर्मणि द्वितीया" (सर. ३-१-१९९) से पादान्त तक विभक्ति विधान है, जो कि इस लघुशोध प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है। पाणिनि ने विभक्ति प्रकरण में "अनभिहिते" (अ. २-३-१) का अधिकार किया है, परन्तु भोजीय तन्त्र में इसका अभाव है। यह अभाव महाभाष्य के प्रभाव से परिलक्षित होता है[32]।

द्वितीय पाद – इस पाद में समास प्रकरण विहित है। भोज ने पाणिनीय सूत्रों के साथ-साथ वार्तिक, इष्टि इत्यादि के समग्र सार को स्व-तन्त्र में समाहित कर स्व-कुशलता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसमें प्रायः अष्टाध्यायी के "सह सुपा" (अ. २-

[30] व्या. म., पस्पशाह्निक।

[31] व्या. म., २-१-१।

[32] व्या. म., २-३-१।

१-४) से "क्त्वा च" (अ. २-२-२२) तक का प्रतिपाद्य समाहित किया गया है। १६१ सूत्रात्मक इस पाद में "अव्ययीभावः" (सर. ३-२-८) से "अन्यपदार्थैः संज्ञायाम्" (सर. ३-२-३२) तक अव्ययीभाव समास तथा "तत्पुरुषः" (सर. ३-२-३३) से आपादपरिसमाप्ति तक तत्पुरुष समास का विधान है।

तृतीय पाद – १४८ सूत्रात्मक इस पाद में "शेषो बहुव्रीहिः" (३-३-१) से "क्वचित् विद्यमानार्थे" (सर. ३-३-१८) तक बहुव्रीहि समास तथा "चार्थे युगपदधिकरणवचनतायां द्वन्द्वः" (सर. ३-३-१९) से "शेषमुभयोः" (सर. ३-३-४८) तक द्वन्द्व समास का विधान है। "प्रायेण पूर्वपदार्थ." (सर. ३-३-४९) से "उत्तरपदातिशय." (सर. ३-३-५७) तक समासों के प्राधान्यादि का वर्णन है। "उपसर्जनं पूर्वम्" (सर. ३-३-५८) से "कडारगडुलकाण." (सर. ३-३-१०२) तक सामासिक पदों में पूर्वनिर्देश किया गया है। "सरूपाणामेकशेष." (सर. ३-३-१०३) से "पुरुषाणां च" (सर. ३-३-११७) तक एकशेष तथा "अव्ययीभावो नपुंसकम्" (सर. ३-३-११८) से पाद परिसमाप्ति तक समासान्तों का लिङ्ग निर्धारण किया गया है।

चतुर्थ पाद – १३५ सूत्रात्मक इस पाद में स्त्री-प्रत्ययों का विधान किया गया है। इसमें गणपठित शब्दों व वार्तिकों को सूत्रबद्ध किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

प्रथम पाद – २१२ सूत्रात्मक इस पाद का प्रारम्भ तद्धित प्रकरण से होता है। इसमें अण्, ण्य, अ, ञ, अञ्, यञ्, टीकक्, ढक्, नञ्, स्नञ्, यत्, इञ्, फञ्, फ्यञ्, फक्, ऐरक्, आरक्, ढ्रक्, व्यत्, व्यन्, छ, छण्, घ, ढकञ्, ख, खञ्, ढञ्, ठक्, ण, इण, फिन्, ञ्यङ्, तथा ड्यण् आदि प्रत्ययों का विधान है। शेष पाद की परिसमाप्ति तक लुक् का प्रकरण है, जिसका मूल अष्टाध्यायी के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ पाद में प्राप्त होता है।

द्वितीय पाद – १४७ सूत्रात्मक इस पाद में प्राय: अष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय के द्वितीय पाद की विषयवस्तु वर्णित है। इसमें ठक्, अन्, कन्, अञ्, छ, ड्यत्, ड्य, वुञ्, इनि, यत्, घन्, घ, इत्यादि प्रत्यय विहित हैं। एतदनन्तर पाद समाप्ति पर्यन्त चातुरर्थिक प्रत्ययों का विधान है।

तृतीय पाद - २६९ सूत्रात्मक इस पाद का प्रारम्भ शैषिक प्रत्ययों से होता है। "शेषे" का अधिकार पादसमाप्ति तक है। इसमें जाति, कृतादि, उप्त, देयम्, तत्र भवः, व्याख्यान, तत आगतः, प्रभवति, गच्छति, ग्रन्थ, अभिजन, भक्ति, इत्यादि अर्थों में प्रायः ३४ प्रत्ययों का विधान है।

चतुर्थ पाद – २०७ सूत्रात्मक इस पाद में अष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय के तृतीय पाद का विकारार्थक प्रकरण, सम्पूर्ण चतुर्थ पाद एवं पञ्चम अध्याय के प्रारम्भिक १७ सूत्रों की विषयवस्तु उपन्यस्त है। पादारम्भ "तस्य विकारः" से होता है, तदनन्तर जयति, दीव्यति, खनति, तरति, चरति, जीवति, हरति, निर्वृत्त, वर्तते, उज्छति, रक्षति, करोति, धावति, पण्यम्, धर्म्यम्, अधीते, व्यवहरति, वसति, साधु इत्यादि अर्थों में विविध प्रत्ययों का विधान किया गया है।

पञ्चम अध्याय

प्रथम पाद – १८० सूत्रात्मक इस पाद में विभिन्न तद्धित प्रत्यय विहित हैं। पादान्त में भाव व कर्मार्थक प्रत्यय विहित हैं। तद्यथा – त्व, तल्, इमनिच्, ष्यञ्, यक्, य, ढक्, अञ्, वुञ्, छ इत्यादि।

द्वितीय पाद – २२४ सूत्रात्मक इस पाद में प्राय: अष्टाध्यायी के पञ्चम अध्याय के द्वितीय पाद का प्रतिपाद्य उपन्यस्त है। इस पाद में क्षेत्र, सख्य, कृत, व्याप्नोति, नेय, अत्ति, अनुभवति, पाक, मूल आदि अर्थों में विभिन्न प्रत्ययों का विधान किया गया है। "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्" (सर. ५-२-१२४) से पादान्त तक मत्वर्थक प्रत्यय विहित हैं।

तृतीय पाद – १५६ सूत्रात्मक इस पाद में प्राय: अष्टाध्यायी के पञ्चम अध्याय के तृतीय पाद की विषयवस्तु वर्णित है। इसमें तस्, दानीम्, द्य, एद्युस्, आरि, धा, थाल्, धण्, कन्, असि, रिल्, रिष्टातिल् आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है।

चतुर्थ पाद – १८९ सूत्रात्मक इस पाद में नाना अर्थों में शस्, वुन्, कृत्वसुच्, धा, सुच्, मयट्, ञ्य, ईकक्, कन्, ठक्, णच्, तिकन्, सु, स्न, कार, इत्यादि प्रत्यय विहित हैं। "समासान्तः" (सर. ५-४-८१) से पादान्त तक समासान्त का अधिकार है।

षष्ठ अध्याय

प्रथम पाद – १७५ सूत्रात्मक इस पाद में अष्टाध्यायी के षष्ठ अध्याय के प्रथम पाद स्वर-प्रकरण के अतिरिक्त सभी विषयों को समावेशित करने का प्रयास किया गया है। प्रारम्भ धातु को द्वित्त्व, अनन्तर सम्प्रसारण, आकारादेश, षकार को सकार, णकार को नकार, तुगागम, संहितायाम् के अधिकार में सन्धिकार्य तथा सुडागम इस पाद के मुख्य विषय है।

द्वितीय पाद – १८० सूत्रात्मक इस पाद में अलुग् विधान, दिवो द्यावा जैसे आदेश, पुंवद्भाव व निषेध, सह को स-आदेश, दीर्घादेश आदि अष्टाध्यायी के षष्ठ अध्याय के तृतीय पाद का प्रतिपाद्य उपन्यस्त है।

तृतीय पाद – १८३ सूत्रात्मक इस पाद में प्रायः अष्टाध्यायी के षष्ठ अध्याय के चतुर्थ का प्रतिपाद्य विवेचित है। भोज "अङ्गस्य" के स्थान पर "प्रकृतेः" का प्रयोग करते हैं। इसमें दीर्घ-विधान, असिद्ध-प्रकरण, अनुनासिक लोप विधान आदि अनेक विषय समाविष्ट हैं।

चतुर्थ पाद – १९२ सूत्रात्मक इस पाद में प्रायः अष्टाध्यायी के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ पाद तथा सप्तम अध्याय के प्रथम व द्वितीय पाद की विषयवस्तु उपन्यस्त है। पादारम्भ में नुमागम व अनेकविध आदेशो का विधान है तदनन्तर इडागम, इड्-निषेध व विकल्प का प्रकरण पादान्त तक वर्णित है।

सप्तम अध्याय

प्रथम पाद – १४० सूत्रात्मक इस पाद में वृद्धि-विधान, निषेध तथा प्रकृति से सम्बद्ध नानाविध आदेश प्रतिपादित है। इसमें प्राय: अष्टाध्यायी के सप्तम अध्याय के द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ पाद के सूत्रों को प्रकरणानुकूल समावेशित किया गया है।

द्वितीय पाद – १५१ सूत्रात्मक इस पाद का प्रारम्भ गुण-वृद्धि विधान व निषेध से होता है। तदनन्तर दीर्घादेश, आट्, याट्, स्याट्, आदि विविध आगमों का विधान है। इसमें प्राय: अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद एवं सप्तम अध्याय के तृतीय व चतुर्थ पाद की विषयवस्तु उपन्यस्त है।

तृतीय पाद – १५० सूत्रात्मक इस पाद में द्वित्त्व-विधि, युष्मदस्मद् के स्थान पर विविध आदेश, तथा "वाक्यटेः प्लुतः"(सर.७-३-१३१) से टि के प्लुतत्व का अधिकार इत्यादि विषय वर्णित है। "पूर्वत्रासिद्धम्" (सर. ७-३-२७) प्रकरण अध्यायान्त तक है।

चतुर्थ पाद – १७८ सूत्रात्मक इस पाद में विसर्जनीयादेश, षत्व-णत्व प्रकरण, कुक्, टुक्, धुट् आदि आगम, ष्टुत्व, श्चुत्व, रेफ व हकार से परे द्वित्त्व, परसवर्ण आदि नानाविध विधान है। इसमें अष्टाध्यायी के अष्टम अध्याय के तृतीय व चतुर्थ पाद का प्रतिपाद्य समाहित है।

अष्टम अध्याय

यह अध्याय पूर्णतः वैदिक प्रकरण व स्वर-प्रकरण से सम्बद्ध है। अष्टाध्यायी में इस वैदिक प्रकरण के नियम तत्तत् प्रकरणानुसार प्रायः यत्र-तत्र प्रकीर्ण है। स्वर प्रकरण भी प्रायः षष्ठ अध्याय के प्रथम व द्वितीय पाद में उपन्यस्त है। भोज इस परम्परा के विपरीत सभी वैदिक नियमों को एकत्र समावेशित करते है।

प्रथम पाद - १७४ सूत्रात्मक इस पाद में सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रथम से पञ्चम अध्याय तक के विविध प्रकरणों से सम्बद्ध वैदिक नियमों का क्रमशः उपस्थापन किया गया है। इसमें प्रगृह्य संज्ञा, लुङ् लकार के नियम, विविध कृत् प्रत्यय, तुमुनर्थक प्रत्यय, लकारादेश व आगम, सुबादेश, विभक्ति, स्त्रीप्रत्यय, तद्धित प्रत्यय आदि विषयक वैदिक नियम विहित है।

द्वितीय पाद – १४९ सूत्रात्मक इस पाद में षष्ठ एवं सप्तम अध्याय से सम्बद्ध वैदिक नियमों का उपस्थापन किया गया है।

तृतीय पाद – २६३ सूत्रात्मक इस पाद में अष्टाध्यायी के षष्ठ एवं अष्टम अध्याय के स्वर-विधायक सूत्र तथा शन्तनु प्रणीत फिट्सूत्रपाठ के स्वर सूत्र उपस्थापित हैं।

चतुर्थ पाद – २३२ सूत्रात्मक इस पाद में भी अष्टाध्यायी के षष्ठ अध्याय के ही शेष स्वर-प्रकरण की विषयवस्तु उपन्यस्त है। डॉ. रामचन्द्र के अनुसार इस पाद के कतिपय सूत्र अस्पष्ट हैं[33]।

इस प्रकार सरस्वतीकण्ठाभरणस्थ प्रतिपाद्य से हम सामान्यतया अवगत हो सकते है। यद्यपि भोजीय तन्त्र प्रायशः पाणिनीय तन्त्र - अष्टाध्यायी, व्याकरण महाभाष्य, वार्तिक, काशिका आदि से नितराम् प्रभावित है तथापि उसमें मौलिकता का सर्वथा अभाव नहीं है। इसी के साथ साथ प्रक्रिया-सारल्य हेतु भोज द्वारा पाणिनीय सूत्रों का नवीनीकरण, सरलीकरण, विस्तारीकरण, संक्षेपीकरण उनकी महती सूक्ष्मेक्षिका के परिचायक है।

भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में अष्टाध्यायी, उणादिकोश, गणपाठ आदि समस्त पाणिनीय तन्त्र, वार्तिक, महाभाष्य आदि व्याख्या ग्रन्थ, वाक्यपदीय आदि दार्शनिक ग्रन्थ, काशिकादि वृत्तियाँ, न्यास व पदमञ्जरी आदि टीकाएँ, तथा चान्द्र, कातन्त्र, जैनेन्द्र, शाकटायन आदि अन्य तन्त्रों का श्रमपूर्वक अध्ययन कर छात्रों की सुगमता हेतु सारल्यमय सार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्रक्रिया के सारल्य हेतु उनका यह प्रयास प्रशंसनीय है, जिसका निदर्शन हमें सरस्वतीकण्ठाभरण में पदे-पदे प्राप्त होता है।

भोज एक उदारहृदय विद्वान् राजा थे। उनका विद्यानुराग जगत्प्रसिद्ध है। सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रणयन में उनका मुख्य उद्देश्य व्याकरण के विशाल कलेवर को एकत्रित कर उसे सर्वग्राही बनाना था। एतदर्थ भोज ने स्वपूर्ववर्ती समस्त व्याकरण-परम्परा का गहन अध्ययन कर स्वरस्वतीकण्ठाभरण का प्रणयन किया। यद्यपि इसका मुख्य आधार पाणिनीय अष्टाध्यायी ही है, तथापि कातन्त्रादि अन्य तन्त्रों का भी इससे प्रभाव परिलक्षित होता है। एक ही ग्रन्थ में सम्पूर्ण परम्परा को संग्रहित करने से इसका कलेवर पर्याप्त विस्तृत हो गया है। कतिपय विद्वानों ने परिणामाधिक्य के कारण लाघव का अभाव मानकर इसके प्रति अनादर प्रकट किया हैं। परन्तु यथास्थिति ऐसी नहीं है। भोज ने सर्वत्र "अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः" का अनुपालन किया है। 'अर्थमात्रे प्रथमा' आदि प्रयोग उनके संक्षेपधी के परिचायक हैं। प्रस्तुत भोजीय तन्त्र में केवल स्वपूर्ववर्ती सिद्धान्तों का संग्रहमात्र नहीं है, वरन् भोज ने नैसर्गिकी स्वप्रतिभा से सूक्ष्मावगाहन कर उनमें आवश्यकतानुसार परिष्कार, परिवर्तन व सम्वर्धन कर तत्कालीन नूतनभाषिक प्रयोगों का भी विचार कर समावेश किया है।

सरस्वतीकण्ठाभरण के कारक व विभक्ति प्रकरण पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भोज पाणिनीय अष्टाध्यायी को ही मुख्याधार मानकर उसका अनुगमन करते हैं। प्रकृत लघुशोधप्रबन्ध में सरस्वतीकण्ठाभरण के कारक-प्रकरण एवं विभक्तिप्रकरण की विविधपक्ष-पुरस्सर समीक्षा की गई है। इस समीक्षा के फलस्वरूप नानाविध तथ्य प्राप्त हुए हैं, जिनका निष्कर्षत्वेन यहाँ प्रतिपादन किया जा रहा है-

- **संरचना-** सरस्वतीकण्ठाभरण का मुख्य आधार अष्टाध्यायी है। कारक व विभक्ति प्रकरण में ही शतशः सूत्र अष्टाध्यायी से यथावत् तथा आंशिक परिवर्तन कर स्वीकार किए गये हैं। तथापि अन्य व्याकरणों का भी इस पर पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है।
- **समग्रता-** सरस्वतीकण्ठाभरण एकमात्र व्याकरण है, जिसमें पूर्ववर्ती समस्त व्याकरण-सिद्धान्त एकत्रोपसंगृहीत हैं। यथा- पाणिनि- 'कर्मणि द्वितीया'। वार्तिककार (कात्यायन) - 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानाम्'। भर्तृहरि – हेतुसंज्ञा के लक्षण में 'अनुकूलो वा' तथा अधिकरण के लक्षण में 'कर्तृकर्मान्तरित' पद ग्रहण। न्यासकार (जिनेन्द्रबुद्धि)- प्रथमा विधान में 'अर्थमात्रे' पाठ। चान्द्र – 'ऋते द्वितीया च'। यहाँ कतिपय आचार्यों के स्थालीपुलाक न्यायेन कारक व विभक्ति प्रकरण में स्वीकृत सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया गया है। इस प्रकार भोज ने स्वपूर्ववर्ती समस्त सिद्धान्तों को एकत्र ही उपन्यस्त करने का प्रयास किया है, जो कि निश्चयेन श्लाघ्य है।
- सरस्वतीकण्ठाभरण में खिलपाठों का समावेश करके भोजदेव ने एक नई दिशा का अनुसरण कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।
- भोजदेव ने परम्परा का संरक्षण करते हुए लौकिक एवं वैदिक उभयविध व्याकरण का अपने शब्दानुशासन में समावेश किया है।
- भोजदेव ने भाषा के सहज गतिशील प्रवाह के कारण वाग्व्यवहार एवं साहित्य में प्रयुक्त नूतन शब्दों के साधुत्व का अन्वाख्यान करके व्याकरण वाङ्मय में एक आदर्श दिशा का निर्धारण किया।

इस प्रकार भोजदेव ने अपने समय की माँग के अनुरूप अपने शब्दानुशासन 'सरस्वतीकण्ठाभरण' की रचना की। जहाँ उन्होंने अपनी मौलिकता को बनाए रखा, वहीं पर मुनित्रयादि से बहुत कुछ ग्रहण भी किया।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. अष्टाध्यायी (पाणिनीय – शब्दानुशासनम्), पाणिनि, सं. सत्यानन्द वेदवागीश, आर्यनगर, अलवर : १९८९.
2. अष्टाध्यायी-भाष्य प्रथमावृत्ति (भाग-१,२,३), ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली : २०११.
3. कातन्त्रव्याकरणम् (शिष्यहितावृत्तिसहित), शर्ववर्मा, सं. डॉ. रामसागर मिश्र, प्रभा प्रकाशन, दिल्ली : २०००.
4. काशिका, वामनजयादित्यविरचिता, सं. विजयपाल विद्यावारिधि, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, हरियाणा : १९९७.
5. न्यास, (काशिका सहित), जिनेन्द्र बुद्धि, सं. द्वारिकाप्रसाद शास्त्री, बनारस : १९६४.
6. पदमञ्जरी,(काशिका सहित), हरदत्त मिश्र, सं. द्वारिकाप्रसाद शास्त्री, बनारस : १९६४.
7. परिभाषेन्दुशेखरः, नागेशभट्ट, सं. डॉ. गिरिजेशकुमारदीक्षित, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी : १९८७.
8. प्रौढमनोरमा, भट्टोजिदीक्षीत, शब्दरत्नबृहच्छब्दरत्नसहित, सं. सीतराम शास्त्री, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस : १९६४.
9. भोजप्रबन्ध राज्यश्री टीकोपेता, श्री बल्लालकवि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : १९६३.
10. महाभाष्य, पतञ्जलि, सं. वेदव्रत शास्त्री,गुरुकुल झज्जर, हरियाणा : १९६४.
11. लघुसिद्धान्तकौमुदी, (भैमी व्याख्या), भीमसेन शास्त्री, भैमी प्रकाशन, दिल्ली : २००५.
12. वाक्यपदीय, भर्तृहरि, चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली : १९९५.
13. वाक्यपदीयम् (व्याख्याद्वयोपेतम्-तृतीय काण्डः), भर्तृहरि, सं. रघुनाथ शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी : १९९७.
14. वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा, नागेश भट्ट, सं. कालिकाप्रसाद शुक्ल, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी : १९७७.
15. वैयाकरणभूषणसारः, ("प्रभा" "दर्पण" व्याख्याद्वयोपेतः), कौण्डभट्ट, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी : वि. सं. २०६८.
16. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (मूलमात्रम्), भट्टोजिदीक्षित, सं. गोपालदत्तपाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : २००८.

[33] स. क. सि. कौ. सां. वि., पृ. ६९।

17. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (तत्त्वबोधिनि-बालमनोरमा-शेखरव्याख्यात्रयविराजिता) प्रथम भाग, भट्टोजिदीक्षित, सं. श्रीगुरुप्रसादशास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी : २०१२.
18. व्याकरणमहाभाष्यम् (प्रथमो भागः- द्वितीयखण्डम्), पतञ्जलि, सं. प्रोफेसर बाल शास्त्री, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली : २००१.
19. व्याकरणमहाभाष्यम् (द्वितीयोतृतीयाध्यायौ), पतञ्जलि, सं. प्रोफेसर बाल शास्त्री, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली : २००१.
20. व्याकरणमहाभाष्यम् (विद्यानिधिहिन्दीव्याख्यासहित- द्वितीय खण्ड : द्वितीय भाग), पतञ्जलि, व्या. प्रोफेसर भीमसिंह वेदालंकार, विद्यानिधि शोधसंस्थान, कुरुक्षेत्र : २०१३.
21. सरस्वतीकण्ठाभरण, (प्रथम), भोजदेव, (साहित्य विषयक), सं. कामेश्वर मिश्र, चौखम्बा ओरियण्टालिया, दिल्ली : २००६.
22. सरस्वतीकण्ठाभरणम्, भोजदेव, (व्याकरणविषयक), सं. टी. आर. चिन्तामणि, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास : १९३७.
23. सरस्वतीकण्ठाभरणम्, भोजदेव, (दण्डनाथ प्रणीत हृदयहारिणी सहित), सं. के. साम्बशिव शास्त्री, अनन्तशयन (त्रिवेन्द्रम्) विश्वविद्यालय, प्रथम भाग : १९३५, द्वितीय भाग : १९३७, तृतीय भाग : १९३८, चतुर्थ भाग – सं. वी. ए. रामास्वामिशास्त्री : १९४८.
24. सरस्वतीकण्ठाभरण – वैदिकव्याकरणम्, भोजदेव, सं. डॉ. नारायण म. कंसारा, राष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठान, नई दिल्ली : १९९२.
25. अग्रवाल, वासुदेवशरण, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : १९६७.
26. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : २००६.
27. ताताचार्य, एन. एस. रामानुज, सुबर्थ विचार (भाग -२), राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली : २००६.
28. त्रिपाठी, रामसुरेश, संस्कृत व्याकरणदर्शन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : १९७२.
29. पाण्डेय, गोपालदत्त, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (व्याकरण खण्ड), उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ : २००१.
30. मीमांसक, युधिष्ठिर, संस्कृत व्याकरण का इतिहास (प्रथम), रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा : १९९४, द्वितीय : २०००.
31. राजपुरोहित, भगवतीलाल, राजा भोज का रचना विश्व, पब्लिकेशन स्किम, जयपुर : १९९०.
32. रामचन्द्र (डॉ.), सरस्वतीकण्ठाभरण के भ्रष्टपाठ : सत्पाठ निर्धारण, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली : २०१०.
33. ……, सरस्वतीकण्ठाभरण और सिद्धान्तकौमुदी का साङ्गोपाङ्ग विवेचन (तद्धित प्रकरण के विशिष्ट सन्दर्भ सहित), परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली: २०१०.
34. रे उ, विश्वनाथ, राजा भोज, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद : १९३२.
35. शास्त्री, विश्वनाथ, सरस्वतीकण्ठाभरण का समीक्षात्मक अध्ययन, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली : १९९६.